जनसत्ता

असंतोष की राह

गन्ना किसानों की समस्याओं के ठोस हल के लिए लंबे समय से मांग उठाई जाती रही है। जब भी जमीनी स्तर पर विरोध के स्वर तेज होते हैं, तब सरकारें आश्वासन के तौर पर इस तरह के बयान जारी करती हैं कि जल्दी ही गन्ना किसानों की सारी शिकायतों को दूर कर दिया जाएगा। लेकिन समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी की घोषणा से लेकर इस समस्या से जुड़े अन्य पहलुओं को लेकर सरकार के रुख की हकीकत क्या रही है, यह किसी से छिपा नहीं है। आए दिन किसानों को अपनी उन्हीं मांगों को लेकर सड़क पर उतरना पड़ रहा है, जिन्हें पूरा करने के बारे में सरकारें काफी पहले ही वादा कर चुकी होती हैं। शनिवार को महाराष्ट्र में गन्ना किसानों के विरोध का जैसा स्वरूप सामने आया, उससे साफ है कि सरकार घोषणाएं करने या आश्वासन देने के मामले में जरूर आगे रहती है, लेकिन उन पर अमल को लेकर गंभीर नहीं है। इस स्थिति के लंबे समय तक बने रहने का ही हासिल यह हुआ कि पश्चिमी महाराष्ट्र के कई इलाकों में बकाए के भुगतान में देरी की वजह से किसानों का आक्रोश फूट पड़ा और उन्होंने कुछ चीनी मिलों पर हमला कर दिया। सतारा और सांगली जिले में जहां लोगों ने दो चीनी मिलों के दफ्तरों में आग लगा दी, वहीं कोल्हापुर के चार ऑफिसों में तोड़फोड़ की गई और उन्हें बंद करा दिया गया।

निश्चित रूप से इस तरह की हिंसा का समर्थन नहीं किया जा सकता, चाहे वह कोई भी पक्ष करे। लेकिन आखिर क्या वजह है कि अगर सरकार की ओर से गन्ने का उचित एवं लाभकारी मूल्य अट्ठाईस सौ रुपए प्रति टन तय है, तो किसानों को महज तेईस सौ रुपए प्रति टन दिए गए? राज्य में इस समय गन्ना किसानों का चीनी मिलों पर करीब साढ़े चार हजार करोड़ रुपए का बकाया है। ऐसे में जो भुगतान हो रहा है, उसमें भी अनुचित कटौती को कैसे सही ठहराया जा सकता है? इस मसले पर चीनी मिलों की दलील यह है कि इस दर पर भुगतान की वजह उत्पादन की कीमत और खुदरा बाजार में चीनी की कीमत है। सवाल है कि अगर खुदरा बाजार में चीनी की गिरी हुई कीमतें इसके लिए जिम्मेवार हैं, तो क्या कभी ऐसा होता है कि जब अनाज की कीमतें आसमान छू रही होती हैं तो इसी मुताबिक किसानों को फसलों की कीमत अदा की जाती हो?

यह जगजाहिर है कि गन्ने की बुआई, पैदा करने से लेकर मिलों तक पहुंचाने और उसकी खरीद के लिए उचित दर के निर्धारण के लिए किसानों को किस जद्दोजहद से गुजरना पड़ता है। शायद ही कभी ऐसा देखने में आया है कि खेती और फसल की लागत या उसकी बिक्री के मामले में किसानों को चीनी मिलों या फिर सरकार की ओर से कोई उत्साह बढ़ाने वाली प्रतिक्रिया मिली हो। तय रकम देने में भी चीनी मिलें आनाकानी करती हैं, तो यह सरकार के निर्देश को भी धता बताने की तरह है, जो बहुत मुश्किल से किसी फसल के लिए उचित और लाभकारी मूल्य तय करती है। चीनी मिलों को यह छूट किसकी ओर से मिल जाती है कि वे उचित मूल्य के रूप में भुगतान की जाने वाली निर्धारित राशि में से भी कटौती करें? दरअसल, वोट हासिल करने के मद्देनजर राजनीतिक दल गन्ना किसानों के सामने बड़े वादे तो कर देते हैं, लेकिन जब उन पर अमल का सवाल आता है तो किसानों को चीनी मिलों की मनमानी के भरोसे छोड़ दिया जाता है। जरूरत इस बात की है कि समय रहते गन्ना किसानों और चीनी मिलों के बीच विवाद के ठोस समाधान तक पहुंचा जाए। अराजकता किसी समस्या के हल को और ज्यादा जटिल बना देती है।

आतंक के खिलाफ

उज्बेकिस्तान की राजधानी समरकंद में भारत, अफगानिस्तान और पांच मध्य एशियाई देशों ने एकजुट होकर आतंकवाद से निपटने का संकल्प लिया है। भारत सहित ये सारे वे देश हैं जो किसी ने किसी न रूप में आतंकवाद की मार झेल रहे हैं। खासतौर पर अफगानिस्तान तो तालिबान के आतंक से लगभग तबाह ही हो चुका है। भारत खुद तीन दशक से ज्यादा समय से सीमापार आतंकवाद से त्रस्त है और समय-समय पर कई बड़े आतंकी हमले झेल चुका है। मध्य एशिया के जो पांच देश भारत के साथ खड़े हुए हैं उनमें उज्बेकिस्तान, कजाकिस्तान, किरगिज गणराज्य, ताजिकिस्तान और तुर्कमेनिस्तान हैं। मध्य एशिया के ये देश पश्चिम एशिया के संकट से अछूते नहीं हैं। ऐसे में इन सभी देशों का भारत के साथ आना हर लिहाज से महत्त्वपूर्ण है। भारत के लिए भी यह जरूरी है कि वह आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में इन देशों को साथ रखे। आतंकवाद से निपटने को लेकर समरकंद में रविवार को भारत-दक्षिण एशिया संवाद की पहली बैठक के बाद जो साझा बयान जारी हुआ, उसके केंद्र में सबसे बड़ी चिंता आतंकवाद ही रही। सभी नेताओं ने एक स्वर में इस पर सहमति जताई है कि आतंकवाद पूरी दुनिया के लिए गंभीर खतरा बना हुआ है और इससे मुकाबले के लिए एकजुट होना पड़ेगा।

मध्य एशिया के देशों से भारत के रिश्तों का इतिहास काफी पुराना रहा है। गहरे सांस्कृतिक और कारोबारी रिश्ते रहे हैं। लेकिन अब यह पूरा क्षेत्र आतंकवाद की गिरफ्त में है। मध्य एशिया के देश प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर हैं। इसलिए सबके सामने यह खतरा बना हुआ है कि जिस तरह इस्लामिक स्टेट और दूसरे आतंकी संगठन पश्चिमी एशिया को अपना गढ़ बना चुके हैं और दूसरी ओर मुसलिम बहुल आबादी वाले अफ्रीकी देशों को अपने कब्जे में कर लिया है, आने वाले वक्त में कहीं वैसी ही स्थिति मध्य एशियाई देशों की भी न होने लगे। यह बात भी सबकी समझ में आ चुकी है कि आतंकवाद छोटे देशों और अर्थव्यवस्थाओं को तेजी से चौपट कर रहा है। ऐसे में अगर भारत और मध्य एशिया के छोटे देश एकजुट होते हैं तो इससे आतंकवाद को बढ़ावा देने वाले देशों पर दबाव बनेगा। क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर भारत ने आतंकवाद के खिलाफ जो मुहिम छेड़ी हुई है, यह उसी का नतीजा है कि दुनिया के कई देशों ने आतंकवाद से निपटने में भारत के नेतृत्व को स्वीकार किया है। समरकंद की इस बैठक में सबसे बड़ी बात अफगानिस्तान की मौजूदगी रही, जो इस बात का प्रमाण है कि भारत आतंकवाद से ग्रस्त अपने सहयोगी देशों को किसी भी सीमा तक मदद देगा और उनके पुनर्निर्माण में भूमिका निभाएगा।

विदेश मंत्री पहले भी कजाकिस्तान, किर्गिस्तान और उज्बेकिस्तान की यात्रा कर चुकी हैं। इसका मकसद मध्य-पूर्व में भारत की पैठ बढ़ाना रहा है। ऐसा करना भारत के हितों के लिए जरूरी भी है, कारोबारी और सामरिक दोनों ही दृष्टियों से। ये देश शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) के भी स्थायी सदस्य हैं। मध्य एशियाई देश तेल-गैस जैसे ऊर्जा क्षेत्र में भारत के लिए बड़े मददगार हैं। कजाकिस्तान ने भारत के परमाणु संयंत्रों के लिए यूरेनियम मुहैया कराने के लिए भारत के साथ असैन्य परमाणु समझौते पर हस्ताक्षर कर रखे हैं। कजाकिस्तान भारत का सबसे बड़ा व्यापार साझेदार भी है और तुर्कमेनिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान-भारत पाइपलाइन (तापी) परियोजना से भी जुड़े हैं। मध्य एशिया के भारत के सहयोगी देश भी पाकिस्तान के सरकार प्रायोजित आतंकवाद को समझ रहे हैं। आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष में अगर मध्य पूर्व में भारत बड़ा क्षेत्रीय मोर्चा खड़ा कर लेता है तो पाकिस्तान के लिए भी यह कड़ा संदेश होगा।

कल्पमेधा

जहां उदारता, सहिष्णुता और सत्य होता है वहां मतभेद भी लाभदायक सिद्ध होते हैं।
-महात्मा गांधी

श्वेत क्रांति का नया संकट

कौशल किशोर

सरकार मिलावटी दूध के कारोबार पर रोक लगाने के प्रयास में लगी है। भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण इसकी जांच के लिए इलेक्ट्रॉनिक किट का इस्तेमाल करता है। इन उपकरणों से जांच में आसानी तो होगी, पर यह दावा करना मुमकिन नहीं है कि मिलावटी दूध का धंधा बंद हो जाएगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि अगले पांच साल में मिलावटी दूध की वजह से भारत के करीब सत्तासी फीसद लोगों को कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है।

भारत दुनिया भर में दुग्ध उत्पादन और खपत के मामले में पहले स्थान पर है। देश में दूध का उत्पादन 14.68 करोड़ लीटर प्रतिदिन है। इसमें इक्यावन फीसद भैंसों से, पच्चीस फीसद विदेशी व मिश्रित नस्ल की गायों से, बीस फीसद देशी नस्ल की गायों से और शेष चार फीसद का उत्पादन ऊंट जैसे बड़े पशु से लेकर बकरी जैसे छोटे पशुओं तक से मिलने वाला दूध शामिल है। दूध की खपत चौंसठ करोड़ लीटर प्रतिदिन है। गौरतलब है कि उत्पादन व खपत के बीच करीब पचास करोड़ लीटर का फर्क है। इसमें पाउडर से बने दूध का भी बराबर योगदान है। इसके बावजूद बड़ी मात्रा में आपूर्ति मिलावटी दूध से ही हो रही है। विभिन्न मानकों पर आधारित रिपोर्ट में यह आंकड़ा पैंसठ से नवासी फीसद तक दर्ज किया गया है। यह दूध यूरिया, डिटर्जेंट, अमोनियम सल्फेट, कास्टिक सोडा, फार्मलीन जैसे खतरनाक रसायनों के मिश्रण से बनाया जाता है। इसके उपभोग से देह के दुरुस्त अंग भी काम करना बंद कर सकते हैं। ये रसायन कैंसर और लीवर की खराबी जैसी कई गंभीर बीमारियों को जन्म देते हैं। इसके बावजूद मिलावटी दूध का गोरखधंधा धड़ल्ले से चल जारी है। इसका नुकसान पशुपालन में लगे किसानों को तो होता ही है, इसका उपयोग करने वालों को ज्यादा होता है जो एक तरह से जीवन से खिलवाड़ है।

बीसवीं सदी के आखिरी तीन दशक विश्व बैंक की मदद से हुई श्वेत क्रांति (ऑपरेशन फ्लड) की सफलता के लिए जाने जाते हैं। यह दूध की नैसर्गिक अवस्था को परिवर्तित कर उसे व्यावसायिक इस्तेमाल के अनुकूल बनाने की बेहद महत्त्वाकांक्षी परियोजना थी। कई सहकारी संस्थानों ने पशुओं का रंग, रूप और नस्ल ही नहीं, बल्कि पशुपालन करने वाले किसानों की दशा भी बदल दी। श्वेत क्रांति की वजह से ही बड़े स्तर पर दूध का कारोबार संभव हुआ। इसमें विभिन्न पशुओं के दूध को एक समान बनाने और इसे देर तक फटने से बचाने के लिए प्रसंस्करण की नई विधियों का इस्तेमाल किया गया। इस व्यापारिक इस्तेमाल का अपना ही व्याकरण शास्त्र है। इसकी भूमिका कमोबेश ऐसी ही है, जैसी बोलियों से बनी भाषाओं के लिए व्याकरण की है। परिवर्तन के इसी क्रम में मिलावटी दूध का भी रहस्य छिपा है। आज इस व्यापारिक रणनीति का परिणाम सामने है। भारत दुनिया भर में दुग्ध उत्पादन ही नहीं, बल्कि मिलावटी दूध के मामले में भी सभी को पीछे छोड़ चुका है। इक्कीसवीं सदी में इस धंधे में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है।

देशी नस्ल के पशुओं से प्राप्त होने वाले ऑर्गेनिक दूध की गुणवत्ता को वैज्ञानिक अनुसंधान में स्वास्थ्य के लिए बेहतर पाया गया। इसे ए-टू मिल्क कहा जाता है। न्यूजीलैंड के कृषि वैज्ञानिक कीथ वुडफोर्ड ने 2007 में एक किताब लिखी थी-'डेविल इन द मिल्क'। वे दूध में मौजूद पाचक प्रोटीन बीटा-केसो-मोरफिन-7 को 'दूध का दानव' कहते हैं। इसकी वजह से कई जानलेवा रोग होते हैं, जिनमें डायबिटीज, दिल की बीमारी और ऑटिज्म जैसे रोग प्रमुख हैं। वुडफोर्ड इस उल्लेखनीय शोध का श्रेय ऑकलैंड विश्वविद्यालय में बच्चों की दवाइयों पर काम करने वाले प्रोफेसर बॉब इलियट को देते हैं, जो छोटे बच्चों को होने वाले डायबिटीज का कारण खोजने में लगे थे। दरअसल न्यूजीलैंड कृषि पर आधारित चालीस लाख लोगों की जनसंख्या वाला एक ऐसा छोटा देश है, जहां दूध की प्रति व्यक्ति खपत दुनिया भर में सबसे ज्यादा है। इस शोध में पाया गया कि डायबिटीज के शिकार सिर्फ वही बच्चे हुए, जो एवन-बिटा-केसिन वाले दूध का सेवन करते हैं। यह समस्या केन्या जैसे देशों में नहीं थी, जहां एटू-बिटा-केसिन वाले दूध का प्रयोग होता रहा। यह समस्या जेनेटिक बदलाव की वजह से खड़ी हुई। यदि ऐसा नहीं होता तो देशी नस्ल के पशुओं से मिलने वाले ऑर्गेनिक दूध में भी ऐसा ही दोष होता। वैज्ञानिक अनुसंधानों में यह साबित हो चुका है।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय गोकुल मिशन शुरू किया है। यह गिर, सिंधी और साहीवाल जैसी देशी गायों के संवर्धन की हजारों करोड़ की परियोजना है। इसे श्वेत क्रांति का तीसरा युग माना जा सकता है। इस बीच दुग्ध उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने का काम भी जोरों पर है। उत्पादन और खपत के आंकड़ों पर गौर करने से कई आश्चर्यजनक बातें सामने आती हैं। भारतीय डेयरी उद्योग की विकास संभावनाओं पर

एक अध्ययन में एसोचैम ने पाया कि भारत दुनिया में विशालतम दूध उत्पादक होने के बावजूद यहां प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता मात्र दो सौ बावन ग्राम प्रतिदिन है। यह दुनिया भर के औसत प्रति व्यक्ति दो सौ उनयासी ग्राम प्रतिदिन से कम है। दूसरी ओर न्यूजीलैंड जैसे छोटे देश में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता नौ हजार सात सौ तिहत्तर, आयरलैंड में तीन हजार दो सौ साठ ग्राम और डेनमार्क में दो हजार चार सौ ग्यारह ग्राम है। आज दूध के व्यवसाय से छह करोड़ भारतीय आजीविका चलाते हैं। खेती-किसानी और पशुपालन ही ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध रोजगार का सुगम साधन है। हैरत की बात है कि पशु को पालने वाले घरों में दूध की खपत सबसे कम है। सिंथेटिक दूध का करोबार करने वाले तो इस जहर का इस्तेमाल कतई नहीं करते हैं।

सरकार मिलावटी दूध के कारोबार पर रोक लगाने के प्रयास में लगी है। भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआइ) इसकी जांच के लिए इलेक्ट्रॉनिक किट का इस्तेमाल करती है। इन उपकरणों से जांच में आसानी तो होगी, पर यह दावा करना मुमकिन नहीं है कि मिलावटी दूध का धंधा बंद हो जाएगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) का कहना है कि अगले पांच साल में मिलावटी दूध की वजह से भारत के करीब सत्तासी फीसद लोगों को कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों का सामना करना पड़ सकता है। इसके खिलाफ भारत सरकार के लिए परामर्श जारी करते हुए डब्ल्यूएचओ ने कहा कि यदि इस पर रोक नहीं लगाई गई तो गंभीर परिणाम भुगतने होंगे।

भारत सरकार ने शर्तों पर अमेरिका से दुग्ध उत्पादों के आयात का फैसला किया है। शुरू में यह करोबार सात अरब डॉलर का होगा। भारत के बाद अमेरिका दूसरा बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है। वहां लंबे समय से डेयरी उद्योग खस्ताहाल है। पशुपालन में लगे किसानों द्वारा आत्महत्या की खबरें सामने आई हैं। हजारों डेयरी फार्म बंद हो चुके हैं। केवल न्यूयार्क राज्य में 2006 से 2016 के बीच यह आंकड़ा एक हजार छह सौ का है। यह क्रम लगातार जारी है। यूनाइटेड स्टेट डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर की रिपोर्ट में कहा गया है कि चीन को किए जाने वाले बावन फीसद दूध पाउडर के निर्यात पर व्यापार युद्ध के बाद हमारे पड़ोसी ने पच्चीस फीसद शुल्क लगा दिया है। इस मुद्दे पर कनाडा की सरकार अपने पशुपालकों के हितों की अनदेखी कर अमेरिका की मदद के लिए तैयार नहीं है। ऐसी दशा में अमेरिका का रुख भारतीय बाजार की ओर होना स्वाभाविक ही है। इससे मिलावट का धंधा खत्म होगा, इसकी कोई गारंटी नहीं है, पर भारतीय पशुपालकों की मुश्किलें जरूर बढ़ेंगी।

पिछले दो साल में कई बार महाराष्ट्र के किसान सड़क पर उतरे हैं। उनकी मांग दूध के दाम कम से कम पांच रुपए प्रति लीटर बढ़ाने की है। कमोबेश यही दशा ओड़िशा सहित देश के तमाम दुग्ध उत्पादक प्रदेशों की है। जाहिर है कि पशुपालन में लगे किसानों की हालत अच्छी नहीं है। इक्कीसवीं सदी में दुग्ध उत्पादों का व्यापार आयात-निर्यात के मकड़जाल में उलझता प्रतीत होता है। इससे वैश्विक व्यापार संतुलन में तो आसानी होगी, लेकिन पशुपालकों के लिए अपने ही उत्पाद का उपभोग संभव नहीं रह जाएगा।

उम्मीदों का बोझ

बृजमोहन आचार्य

नए साल के तीसरे दिन जब सोशल मीडिया को देखा तो नए साल के बधाई संदेशों और कुछ माह के लिए संकल्प लेने वाले संदेश पढ़ने को मिल रहे थे। वाट्सएप के कई समूहों में जुड़ा हूं। अधिकतर में 'नया साल मुबारक हो' और 'नया साल आपके जीवन में खुशियां भर दे' जैसे संदेश पढ़ने को मिल रहे थे। लेकिन एक संदेश ऐसा पढ़ने को मिला, जिसने मुझे झकझोर कर रख दिया। रात भर उस संदेश के बारे में ही सोचता रहा और नए साल के स्वागत की खुशियां मिनटों में ही काफूर हो गईं। यह संदेश एक लड़की ने अपने अभिभावकों को लिखा जिन्होंने अपनी लाडली से ढेर सारी उम्मीदें पाल रखी थीं। संदेश पढ़ कर यह सोचने को मजबूर हो गया कि क्यों अभिभावक अपने बच्चों को इतनी उम्मीदों के बोझ से दबा देते हैं जो कभी वापस खड़े ही नहीं हो पाते हैं और ऐसा कदम उठा लेते हैं जो अभिभावकों के लिए ताउम्र दुख देने वाला हो जाता है।

उस युवती ने अपने अभिभावकों को ऐसा पत्र लिख कर अन्य अभिभावकों को भी यह संदेश दे दिया कि बच्चों पर बिना मतलब ऐसा कोई दबाव न डालें, जिससे उन्हें कोई गलत कदम उठाने को लिए मजबूर होना पड़े। उस युवती ने आत्महत्या करने से पहले अपने अभिभावकों को पत्र लिखा कि उसे विज्ञान पढ़ने में कोई रुचि नहीं थी। उसकी रुचि इतिहास और अंग्रेजी साहित्य में पढ़ने में थी। लेकिन अभिभावकों ने अपनी इच्छाओं को युवती पर लाद कर उसका बचपन तो समाप्त कर दिया था। लेकिन उसकी जिंदगी को भी समाप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अंग्रेजी साहित्य और इतिहास उसे अंधेरे से बाहर निकाल रहे थे और अभिभावकों का दबाव उसे अंधकार की ओर धकेल रहा था। अंत में युवती ने अभिभावकों का सब कुछ सहन कर लिया था और दबाव में विज्ञान को भी अंगीकार कर लिया था। लेकिन उसने अपने पत्र में लिखा कि उसकी छोटी बहन पर ऐसा कोई दबाव नहीं डालना, जिससे वह भी अंधकार की ओर चली जाए, क्योंकि छोटी बहन अपनी मर्जी से जो भी कर रही है, अच्छा कर रही है।

इस पत्र ने उन अभिभावकों की तो आंखें खोल दीं जो दबाव में युवती को अपने हिसाब से ढालना चाहते थे, लेकिन अन्य अभिभावकों को भी सचेत कर दिया कि किसी भी बच्चे पर अपनी इच्छाओं का इतना बोझ न डालें कि उनका लाडला या लाडली कुछ बनने से पहले ही मिटने को मजबूर हो जाए। सही है कि हर अभिभावक की इच्छा रहती है कि उसका बच्चा ऐसी तालीम हासिल करे जिससे समाज में उनका नाम हो और वे अपने परिचितों के सामने अपने आपको खास समझें। अभिभावक यह चाहते हैं कि जब पड़ोसी का बच्चा या फिर उनके किसी रिश्तेदार का बच्चा विज्ञान पढ़ कर चिकित्सक, वैज्ञानिक और इंजीनियर बन सकता है तो उनके बच्चे में ऐसी क्या कमी है कि वह कोई खास उच्च डिग्री हासिल नहीं कर सकता। लेकिन वे यह नहीं देखते कि उनके रिश्तेदार के बच्चे की किस विषय को पढ़ने में रुचि है और उन्होंने उसकी रुचि का खयाल रखा होगा। लेकिन देखादेखी के चक्कर में अपने बच्चों पर नाजायज दबाव डाल कर उन्हें अंधेरे की ओर धकेल दिया जाता है। कभी बच्चे को साथ लेकर उससे यह नहीं पूछा जाता कि उसकी किस विषय में रुचि है और वह आगे चल कर क्या बनना चाहता है।

दुनिया मेरे आगे

यही कमी अभिभावकों के लिए बाद में दुख का कारण बनती है। आज सैकड़ों बच्चे न चाहते हुए भी दबाव में आकर ऐसा विषय चुनते हैं जो उनके लिए जिंदगी भर दुख देता है। अंत में वे आत्महत्या जैसा कदम उठा कर अभिभावकों को सोचने के लिए मजबूर कर देते हैं कि दबाव डालकर उनके जीवन के साथ उन्होंने खिलवाड़ किया। आज सेकेंडरी कक्षा उत्तीर्ण करते ही बच्चे को किसी अन्य शहर में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है, लेकिन उसे कभी पास बैठा कर उसकी रुचि जानने का प्रयास ही नहीं किया जाता है। अगर बच्चे अपनी मर्जी से कोई विषय लेते हैं तो वे आगे चल कर कुछ कर दिखाने की क्षमता भी रखते हैं अन्यथा दबाव का परिणाम तो सबके सामने है।

अगर अभिभावकों ने अपने बच्चों से उम्मीदें पाल रखी हैं और बच्चों में कुछ करने की आशा की किरण नजर आती भी है तो अभिभावकों को किसी काउंसलर से मिल कर बच्चे के हावभाव और उसकी रुचि से अवगत होना चाहिए। बच्चे को भी काउंसलर से जरूरी परामर्श के सत्र में डालना चाहिए। अन्यथा दबाव में चुना गया विषय कोई काम नहीं आएगा और एक दिन युवती की तरह अन्य बच्चे भी पत्र लिख कर अभिभावकों को सोचने के लिए मजबूर कर देंगे। अभिनेता आमिर खान की 'थ्री इडियट' फिल्म भी यह संदेश देती है कि पढ़ाई के लिए बच्चों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालना चाहिए।

बिन मांगी मुराद

सामान्य वर्ग को सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं में आर्थिक आधार पर दस फीसद आरक्षण देने का कानून बनने से एक नई बहस छिड़ गई है। क्या यह सामाजिक न्याय की दिशा में एक कदम है या फिर कोई नया राजनीतिक पैंतरा है? आरक्षण विरोधियों का यही तर्क हुआ करता था कि आरक्षण आर्थिक आधार पर होना चाहिए। इस मुद्दे पर आज न तो कोई आंदोलन था, न ही सवर्णों की कोई मांग। पूर्व प्रधानमंत्री नरसिंह राव के समय सुप्रीम कोर्ट ने आर्थिक आधार पर आरक्षण को संविधान के विरुद्ध बताया था पर अब तो संविधान संशोधन हो गया। इसके द्वारा संविधान में अनुच्छेद 15 (6) और अनुच्छेद 16 (6)जोड़ा गया, जिसे सुप्रीम कोर्ट में इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह संविधान के मूल ढांचे के विरुद्ध है। आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग की परिभाषा को भी चुनौती दी गई है क्योंकि उसे तय करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर है।

न्यायालय द्वारा सामाजिक और शैक्षणिक आधार पर आरक्षण देने पर 50 फीसद की बंदिश लगी हुई है। तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि राज्यों ने उसे तोड़ा जरूर है पर वह न्यायालय में विवादित है। लेकिन आर्थिक आधार पर दिया जाने वाला आरक्षण उस लक्ष्मण रेखा के बाहर है। तो क्या अब 50 फीसद वाली बंदिश निष्प्रभावी हो जाएगी? केशवानंद भारती मुकदमे 1973 में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय को संविधान का मूल ढांचा माना गया था। आर्थिक आधार पर आरक्षण देने वाला यह संशोधन देश के गरीब सवर्ण और गरीब मुसलिमों को आर्थिक न्याय दिलाने की दिशा में एक कदम है। तो क्या न्यायालय को अपना निर्णय बदलना पड़ेगा? जो हो, पर इसका राजनीतिक लाभ संभवतः राजग सरकार और भाजपा को अवश्य मिल सकता है। यदि सरकार को हिंदू और मुसलिम दोनों ही समुदायों में गरीबों का वास्तविक हित करना है तो गरीबी की सीमा रेखा को और नीचे ले जाना होगा, अर्थात क्रीमी लेयर निर्धारित करने वाली राशि को हटाना पड़ेगा। गरीब सवर्णों, मुसलिमों और अन्य अल्पसंख्यकों को आर्थिक आधार पर आरक्षण से बिन मांगी मुराद मिली है। उनके गरीब परिवारों में आशा की एक किरण जगी है।

सरकार द्वारा सवर्णों और मुसलिमों को आर्थिक आधार पर आरक्षण देकर संभवतः उस वैमनस्य को भी कम करने की कोशिश हुई है जिसमें 1989 में मंडल बनाम कमंडल के कारण वृद्धि हुई थी। वैसे गौरतलब यह भी है कि आरक्षण न तो नवयुवकों की रोजगार की समस्या का समाधान है और न ही सामाजिक न्याय लाने का कोई ब्रह्मास्त्र। यह वोट बैंक की राजनीति अवश्य है।

● *अमन सिंह, प्रेमनगर,बरेली, उत्तर प्रदेश*

यह फर्क

पंजाब की लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी में संपन्न 106वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित प्रो एब्रम हेर्शको, थॉमस सुडाफ और प्रो डेकन हलदानी की उपस्थिति में अवैज्ञानिक बातें कही गईं। आंध्र विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर जे नागेश्वर राव ने कौरवों को टेस्ट ट्यूब बेबी माना। इस विज्ञान कांग्रेस में रावण के 24 विमानों की बात कही गई और बताया गया कि राम के पास गाइडेड मिसाइलें थीं! एक शोधकर्ता ने तो आइंस्टीन, न्यूटन, स्टीफन हॉकिंग सबको किनारे कर दिया। यह है आज की विज्ञान कांग्रेस, जिसमें शामिल अनेक वैज्ञानिक संघी दृष्टि और समझ से संचालित हैं।

यूरोप में मध्यकाल में विज्ञान की लड़ाई धर्म और चर्च से थी। इक्कीसवीं सदी के भारत में विज्ञान को धर्म और मिथक के हवाले किया जा रहा है। नेहरू के 'मॉडर्न इंडिया' और भाजपा के 'न्यू इंडिया' का यह फर्क है!

● *हेमंत कुमार, ग्राम/पोस्ट-गोराडीह, भागलपुर*

बाजार की चुनौती

इंटरनेट का उपयोग करने वाला लगभग हर व्यक्ति आज ऑनलाइन शॉपिंग के जरिए छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी-बड़ी उपयोगी वस्तुओं की खरीददारी कर रहा है।

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

ऑनलाइन खरीदी को प्रतिष्ठा के सूचक के रूप में देखा जा रहा है। इसे तुलनात्मक रूप से अधिक सुविधाजनक और किफायती समझा और माना जा रहा है। हालांकि ऑनलाइन शॉपिंग के अपने नुकसान हैं पर इन सबके बीच ऑनलाइन कारोबार से प्रभावित होने वाला सबसे बड़ा वर्ग स्थानीय छोटे व्यापारियों का है।

स्थानीय खुदरा विक्रेता ग्राहकों की बाट जोहते रहते हैं और स्थानीय ग्राहक ऑनलाइन खरीददारी से अपनी जरूरतें पूरी करते दिखाई देते हैं। इस वजह से स्थानीय व्यापारियों के सामने रोजी-रोटी जुटाने की समस्या आ खड़ी हुई है। स्थानीय कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं जैसे दीवाली में दिया-बाती को ग्राहक नहीं मिल रहे। ऐसे छोटे व्यापारियों व कारीगरों की दीवाली साल दर साल फीकी होती जा रही है। दूसरी तरफ ऑनलाइन शॉपिंग से जुड़ी कंपनियों की चांदी कट रही है। यह परिस्थिति समाज में एक विशेष प्रकार के आर्थिक असंतुलन को जन्म दे रही है।

ई कामर्स के इतनी तेजी से बढ़ने के पीछे सबसे बड़ा कारण इंटरनेट की व्यापक पहुंच के जरिए जोरदार प्रचार और सामानों की त्वरित होम डिलिवरी रही है। इन दोनों मामलों में खुदरा विक्रेता पीछे रह जाते हैं। ई कॉमर्स को टक्कर देने और अपने बाजार को मजबूत बनाने के लिए खुदरा कारोबारियों को चाहिए कि वे अपने गुणवत्तायुक्त उत्पादों का घर-घर प्रचार सुनिश्चित करें और ग्राहकों द्वारा खरीदे गए उत्पादों को उनके घर पहुंचाने की व्यवस्था करें। प्रचार-प्रसार के लिए इंटरनेट और स्थानीय मीडिया जैसे साधनों का अच्छा उपयोग किया जा सकता है। उन्हें सामानों के अलग-अलग गुणवत्तापूर्ण प्रकार और विकल्प उपलब्ध कराने की दिशा में भी विचार करना होगा। ई कॉमर्स के नियमन के लिए नीति बनाने के विषय में नीति निर्धारकों को सोचना चाहिए ताकि स्थानीय स्तर पर लोग बेरोजगार होने से बच पाएं और आर्थिक असंतुलन को दूर किया जा सके।

● *ऋषभ देव पांडेय, सूरजपुर, छत्तीसगढ़*

जनसंख्या विस्फोट

भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वालों दशों में दूसरे स्थान पर है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 121 करोड़ है और अब इसके लगभग 135 करोड़ होने का अंदाजा लगाया जाता है। हमारे देश में संसाधन सीमित हैं लेकिन आबादी की आवश्यकताएं असीमित हैं। इन्हें पूरी करना किसी देश की सेना से जंग जीतने से कम नहीं है। लगातार जनसंख्या बढ़ने से बेरोजारी भी बढ़ रही है। कहा जा रहा है कि 2021 की जनगणना में भारत विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। अगर जनसंख्या इसी रफ्तार से बढ़ती गई तो उसकी जरूरतों की पूर्ति करना बहुत कठिन होगा।

● *मोहम्मद असिफ, दिल्ली विश्वविद्यालय*